ओ३म्

'वैदिक धर्म की संसार को सर्वोत्तम देन यज्ञ और अग्निहोत्र'

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

मनमोहन कुमार आर्य

संसार के सभी धर्म जो वस्तुतः मत–मतान्तर व मजहब आदि हैं, सर्वांगीण न होकर एकांगी हैं। इनमें सत्य व असत्य मिश्रित मान्यतायें व सिद्धान्त पाये जाते हैं जिन्हें वार्तालाप, व्याख्यान, गोष्ठी, विचार–विमर्श तथा लिखित व मौखिक शास्त्रार्थ द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। क्या कोई ऐसा धर्म या मत भी संसार में है जिसे हम पूर्ण, शुद्ध व सर्वांगीण मत कह सकते हैं? इसका उत्तर हम अपने विगत 40 वर्षों के अध्ययन से यह देंगे कि हां, सृष्टि के आरम्भ, आदि काल वा सर्गारम्भ में ईश्वर से प्रादुर्भूत वेदों की शिक्षाओं से प्रचलित मत व धर्म ही सर्वांगीण, पूर्णतया शुद्ध, संसार के सभी मनुष्य के लिए अनुकरणीय, आचरणीय, उपादेय, जीवन का पूर्ण विकास व उन्नति करने में समर्थ, जीवन के यथार्थ उद्देश्य से परिचित कराने के साथ उसके साधन का ज्ञान कराने व धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष रूपी चार उद्देश्यों की प्राप्ति कराने में समर्थ भी है। जब हम अपने खेतों में फसल को काट लेते हैं तो वहां बरसात आदि में खरपतवार उग जाती हैं। किसान का काम होता है कि जब वह नई फसल बोये तो अपने खेते में हल चलाये और खरपतवारों को पूरी तरह से साफ कर दें या हटा दें। ऐसी ही धर्म के क्षेत्र में भी कई बार आवश्यकता हो जाती है। महाभारत युद्ध के बाद देश व विदेश में लोगों मुख्यतः वेदज्ञानी ब्राह्मणों के आलस्य प्रमाद आदि अनेक कारणों से वैदिक धर्म का ह्रास हो गया और धर्मिक जगत में खरपतवार की भांति असत्य व मिथ्या मान्यताओं व सत्यासत्य मिश्रत सिद्धान्तों से युक्त नाना मत–मतानतर उत्पन्न हो गये। **समय बीतने के साथ ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी में वेदों का सूर्य पुनः उदय व प्रकाशित हुआ जिसका श्रेय महर्षि दयानन्द सरस्वती को है। हमें लगता है कि महर्षि दयानन्द द्वारा वेद भानु के उदय के पीछे कहीं न कहीं ईश्वर की ही प्रेरणा कार्य कर रही थी। यह जो कुछ कार्य महर्षि दयानन्द ने किया वह आश्चर्यजनक होने के साथ किसी चमत्कार से कम नहीं है। आईये, संक्षेप में पहले मत–मतान्तरों के बारे में और फिर सत्य वैदिक मत की यज्ञ आदि मान्यताओं व सिद्धान्तों पर दृष्टि डालते हैं।**

आजकल हमारे देश व विदेशों में अनेक मत–मतान्तर प्रचलन में है। इन सभी मतों का जन्म महाभारत युद्ध के बाद विगत 4,000 वर्षों में हुआ। इनमें सबसे पुराना मत पारसी मत है, उसके बाद बौद्ध, जैन, ईसाई, इस्लाम आदि मत समय–समय पर प्रवृत्त होते रहे। जैसा हमने पहले लिखा है कि यदि किसान फसल काट लेता है तो उसके खेत में खरपतवार उग आती है। ऐसा ही प्रायः धर्म के क्षेत्र में भी हुआ। महाभारत काल में हमारे बड़े दिग्गज, राजपुरूष, विद्वान, पण्डित, ऋषि–मुनि आदि समाप्त हो गये। शासन, शिक्षा व सामाजिक व्यवस्थायें भी कुप्रभावित हुई। समुचित शिक्षा तथा वेदों का अध्ययन व उनका प्रचार न होने के कारण अवैदिक मतों का उद्भव होना स्वाभाविक था। यह एक प्रकार से वेदों के सत्य ज्ञान के अभाव व विकृत मत के परिणामस्वरूप वैकल्पिक मत थे। **यह कह सकते हैं कि यह ऐसा ही था जैसे कि रात्रि में सूर्य का प्रकाश उपलब्ध न होने पर दीपक या विद्युत का प्रकाश करना पड़ता है।** बाद में पुनः सूर्योदय होने पर दीपक व विद्युत के प्रकाश को बन्द कर दिया जाता है। महाभारत काल के बाद जो जड़ता समाज में आई थी, उसका समाधान मत–मतान्तरों ने करने की कोशिशें की परन्तु इसमें वह सफल नहीं हो सके जिससे मनुष्य समाज अनेक मतों में विभाजित हो गया जो उनके लिए क्लेश का कारण बना। इसका प्रमुख कारण यह है कि मनुष्य अल्पज्ञ होता है और उसमें कुछ या अधिक मात्रा में स्वार्थ, एषणायें एवं अविद्याादि दोष विद्यमान रहते हैं। उसे अपने से अधिक ज्ञानियों से ज्ञान की व आचार्यों से सदाचार की जीवन्त शिक्षा की अपेक्षा रहती है। यदि उसे ज्ञानी आचार्य न मिले या वह ज्ञानियों की उपेक्षा कर स्वयम्भू धर्माचार्य बनने का प्रयास करे, जैसा कि आजकल भी हम देख रहे हैं, तो वह जो मत चलायेगा वह एकांगी तो होगा ही परन्तु साथ–साथ उसमें अनेक अनुचित, अनावश्यक व मनुष्य के हितों के विपरीत मान्यतायें प्रचलित हो जाती हैं। यह स्वाभाविक है और ऐसा ही न्यूनाधिक हुआ भी। इसका उदाहरण महाभारत काल व उससे पूर्व जो यज्ञ और अग्निहोत्र का प्रचलन था उन्हें महाभारतोत्तर काल के हमारे मत प्रवर्तक जान व समझ नहीं सके और उन्होंने अपनी अज्ञानता व अल्पज्ञता के कारण उनका तिरस्कार किया। न केवल यज्ञ के ही क्षेत्र में ऐसा हुआ अपितु अनेक मान्यताओं व सिद्धान्तों में भी त्रुटियां और कमियां शामिल कर ली गईं जिससे मनुष्यता को अनेक प्रकार से भारी हानि हुई।

हम यदि महाभारत काल के बाद के सनातन वैदिक धर्म का अध्ययन करें तो हम देखते हैं कि इसमें अनेक अन्धविश्वास व पाखण्ड की बातें व मान्यतायें शामिल हो गईं। उदाहरण के लिए मूर्तिपूजा, अवतारवाद, फलित ज्योतिष, गुण, कर्म व स्वभाव से रहित जन्म की जाति प्रथा का प्रचलन व उसमें छोटे–बड़े, ऊंच–नीच, छुआ–छूत आदि का भेदभाव, स्त्री व शूद्रों को वेदाध्ययन व शिक्षा के अधिकार से वंचित किया जाना, बेमेल विवाह व बाल विवाह का प्रचलन और बाल विधवाओं व युवावस्था की विधवाओं के पुनर्विवाह के अधिकार का निषेध जैसी अनेकानेक अन्धविश्वास व कुरीतियां सनातन वैदिक मत में सम्मिलित हो गयीं। विगत लगभग एक–डेढ़ वर्षों में 18 पुराणों की रचना की गई और इन्हें वेदों व वैदिक आर्ष ज्ञान का स्थानापन्न मान लिया गया जिससे धर्म का यथार्थ स्वरूप विकृत होकर समाज के लिए हानिकारक व घातक सिद्ध हुआ। पूर्ण अंहिसात्मक यज्ञों व अग्निहोत्रों में पशु हिंसा आरम्भ हो गई। यहां तक कि गोमेघ, अश्वमेघ व नरमेघ यज्ञों के यथार्थ अर्थ व अभिप्राय को न जानकर इन यज्ञों में गाय, अश्व व मनुष्यों को मारकर उनके मांस आदि से आहुतियां दी जाने लगी। विदेशों में अस्तित्व में आये मतों में पशुओं के मांस खाने को धर्म सम्मत माना जाता है जो कि अज्ञानता का परिचायक एंवं धर्म के सर्वथा विरूद्ध कार्य है। देश–विदेश के इन सभी मतों में स्त्रियों को समान अधिकार प्राप्त नहीं हैं जैसे की वेदों व वैदिक शास्त्रों में हैं। वैदिक काल में स्त्रियां ऋषिकायें, यज्ञों की ब्रह्मा, शास्त्रार्थ करने वाली, युद्ध में भाग लेने

वाली भी हुई है जिससे स्त्रियों की उच्च स्थिति का ज्ञान होता है। सारे संसार में ईश्वर एक ही है और उसी के नाम ईश्वर, परमात्मा, भगवान, गाड, अल्लाह व खुदा आदि हैं। इस कारण एक ईश्वर की उपासना पद्धति भी एक ही होनी चाहिये जबकि सभी मतों की उपासना पद्धतियां पृथक–पृथक हैं। प्रायः सभी मतों में मनुष्य जीवन के उद्देश्य को न जानने के कारण यह उपासना पद्धतियां जीवन के उद्देश्य की पूर्ति वा लक्ष्य की प्राप्ति में सफल सिद्ध नहीं होती। हमें सभी उपासना पद्धतियां अपूर्ण प्रतीत होती है जो ईश्वर के सत्यस्वरूप का ज्ञान, उससे मित्रता व उसकी प्राप्ति में उपयुक्त नहीं है। ऐसा लगता है कि सर्वत्र कुछ लिखे हुए शब्दों को याद कर उच्चारण कर लेना और परम्परानुसार क्रियायें कर लेना ही उपासना माना जाने लगा है जबकि उपासना ईश्वर के सत्य गुणों को जानकर चिन्तन, मनन व ध्यान से उन गुणों व उन गुणों के गुणी ईश्वर का प्रत्यक्षीकरण करना है जिससे उपासक की सभी भ्रान्तियां व संशय समाप्त हो जायें।

वैदिक धर्म सृष्टि की आदि में अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न सृष्टि के आदि मनुष्यों को सीधा ईश्वर से प्राप्त हुआ था। वेदों में ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति का सत्यस्वरूप प्राप्त होता है। ईश्वर के गुणों, कर्मों व स्वभाव का ज्ञान भी वेदों में यथार्थ रूप में वर्णित है। माता–पिता व आचार्यों के कर्तव्य, सन्तानों, शिष्यों व परस्पर के सभी सम्बन्धों के कर्तव्य, ब्रह्मचर्य का वर्णन व उससे लाभ एवं इसकी अनिवार्यता, ईश्वर की उपासना, प्रकृति व इसके पदार्थों का का अल्प मात्रा में त्याग पूर्वक उपभोग, संसार के सब मनुष्यों के एक समान होने की शिक्षा, गुण, कर्म व स्वभाव के अनुसार मनुष्य का ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र होना, जन्म पर आधारित जाति प्रथा का सर्वथा निषेध, विवाह में गुण–कर्म–स्वभावों कीं समानता, नियत काल में ईश्वरोपासना, दैनिक अग्निहोत्र, पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेव यज्ञ तथा अतिथि यज्ञ आदि का सम्पादित करना आदि कार्य किये जाते हैं। वैदिक धर्म मूर्ति पूजा, अवतारवाद, अयोग्य–व्यक्तिपूजा, स्त्रियों की पर्दा प्रथा, बहु विवाह, बहु पत्नी प्रथा, बहु पति प्रथा, मांसाहार, मद्यमान, धूमपान, जन्मना जाति व्यवस्था का विरोधी तथा स्त्री व शूद्रों की अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा व चिकित्सा का पोषक व समर्थक है। इसे विस्तार से जानने के लिए महर्षि दयानन्द का वेद भाष्य व सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थों का अध्ययन आवश्यक है।

वेदों की एक सर्वोत्तम देन **''यज्ञ व अग्निहोत्र''** का प्रत्येक गृहस्थी द्वारा दैनिक रूप से अनुष्ठान करना है। यज्ञों में वेद मन्त्रों का उच्चारण होकर ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना का उद्देश्य पूरा होता है। वेद मन्त्रों में यज्ञ से होने वाले लाभों का वर्णन होने से उनका उच्चारण किया जाता है जिन्हें जानकर यज्ञों को करने में प्रवृत्ति होती है। यज्ञ से इहलौकिक और पारलौकिक दोनों जीवन उन्नति को प्राप्त होते हैं। यज्ञ–अग्निहोत्र के धूम से वायुमण्डल पवित्र होकर यज्ञकर्त्ता सहित दूरस्थ स्थानों के बड़ी संख्या में मनुष्यों के स्वास्थ्य को लाभ होता है, रोग के किटाणुओं का नाश होकर रोग नष्ट होते हैं तथा यज्ञ करने वाले से रोग दूर रहते हैं। याज्ञिक जीवन वाले लोग सामिष भोजन सहित मद्यपान, धूम्रपान तथा जुआ आदि से दूर रहकर देश व समाज के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं। यज्ञ करने से स्वास्थ्य की आरोग्यता व ईश्वर से मिलने वाले सुख यज्ञकर्त्ता को प्रसन्नता व आनन्द प्रदान करते हैं। यज्ञकर्त्ता स्वाध्याय से अनेकानेक विषयों को जानकर उससे लाभ उठाता है। सारांश में यज्ञ से सुखों की प्राप्ति, दुःखों की निवृत्ति, ईश्वर से मित्रता, अवगुणों का दूर होना तथा सद्गुणों का प्राप्त होना आदि अनेकानेक लाभ प्राप्त होते हैं। यह यज्ञ अग्निहोत्र रूपी महत्वपूर्ण कृत्य को केवल वैदिक धर्मी आर्य समाजी लोग ही सम्प्रति विधि विधान पूर्वक करते हैं। संसार के अन्य मतों में यज्ञ के मनुष्य जीवन के लिए उपयोगी कृत्य का प्रावधान न होने से उन मतों की यह न्यूनता ही कही जा सकती है। आज भी यदि वह इसे अपना नहीं रहें हैं तो इसका कारण उनकी अज्ञानता, स्वार्थ व मिथ्याभिमान आदि प्रवृत्तियां ही हैं। योग भी वेदों का ही एक अंग है। 6 वैदिक दर्शन में प्रमुख योग दर्शन है। योग का मुख्य उद्देश्य ईश्वर को जानना व प्राप्त करना है। आज योग को विश्व भर में मान्यता मिल चुकी है। योग का अब शायद कोई विरोधी नहीं है। विरोध तो कोई तब करेगा जब उसके पास विरोध करने के लिए कोई ठोस प्रमाण, युक्ति, कारण व आधार होगा जो कि किसी के पास है ही नहीं। योग से एक ही लाभ नहीं अपितु अनेकों लाभ है। योग को हम जीवन के उद्देश्य की प्राप्ति का प्रमुख साधन भी कह सकते हैं। इसके सफल होने से ईश्वर का साक्षात्कार होकर मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है।

यज्ञ व अग्निहोत्र भी योग के समान ही महत्वपूर्ण एवं संसार के प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक है। योग व यज्ञ से दूर व्यक्ति ईश्वर से भी दूर है। वह कभी ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता और न जीवन के उद्देश्य व लक्ष्य को ही प्राप्त कर सकता है। **इसी प्रकार से जहां यज्ञ है वहां ईश्वर है और जहां यज्ञ नहीं है, वहां ईश्वर नहीं है।** यज्ञ में देव पूजा, संगतिकरण व दान तीनों का समन्वय है। सेवा, परोपकार, विद्वानों व वृद्धों की सेवा सब यज्ञ के अन्तर्गत आती है। कोई भी नेक व अच्छा काम यज्ञ के बाहर नहीं है। मनुष्य जीवन का उद्देश्य सत्य को ग्रहण करना और असत्य को छोड़ना है। जो यज्ञ को स्वीकार नहीं कर रहा है, हम अनुभव करते हैं कि वह सत्य को स्वीकार नहीं कर रहा है और जाने अनजाने असत्य के मार्ग पर चल रहा है जो उसे मंजिल प्राप्त कराने के स्थान पर मंजिल से बहुत दूर ले जा रहा है जहां उसे कभी अपने जीवन का लक्ष्य अर्थात् मंजिल की प्राप्ति नहीं होगी। **आईये, सत्य को ग्रहण करने का व्रत लें और यज्ञ को अपने जीवन का अविभाज्य अंग बनाये।** कहीं ऐसा न हो कि बाद में पछताना पड़े और हमारी स्थिति ऐसी बन जाये कि **'अब पछताये क्या होत है जब चिड़िया चुग गई खेत।'** यज्ञ का उन्नीसवीं सदी में पुनरूद्धार महर्षि दयानन्द सरस्वती ने किया था। सारा संसार और इसका एक–एक प्राणी उनका ऋणी है। यज्ञ को जीवन का अंग बना कर ही हम महर्षि दयानन्द के ऋण से उऋण हो सकते हैं।

–मनमोहन कुमार आर्य
पताः 196 चुक्खूवाला–2
देहरादून–248001 / फोनः 09412985121